अजय कुमार चौधरी

बनाम

भारत संघ अपने सचिव और अन्य के माध्यम से

(सिविल अपील संख्या 1912/2015)

16 फरवरी, 2015

[न्यायाधिपति विक्रमजीत सेन और न्यायाधिपति सी. नागप्पन]

सेवा कानून - निलंबन - स्वामित्व का उल्लंघन - धारितः त्वरित सुनवाई का अधिकार संविधान का अनुच्छेद 21 में निहित है और सीआरपीसी की धारा 309 - धारा के प्रावधान में भी परिलक्षित होता है। 167(2) सी.आर.पी. सी. में किसी आरोपी की हिरासत को 90 दिनों की अवधि के भीतर सीमित करने का प्रभाव है - धारा 167(2) के परंतुक की सर्वोत्कृष्टता को विभागीय अनुशासनात्मक जांच के मामलों में निलंबन आदेशों को मध्यम करने के लिए निकाला जा सकता है - इस प्रकार, यह निर्देशित किया जाता है कि मुद्रा यदि इस अवधि के भीतर अपराधी को आरोप-पत्र तामील नहीं किया जाता है, तो निलंबन की अवधि तीन महीने से अधिक नहीं बढ़ाई जानी चाहिए - यदि आरोप-पत्र तामील किया जाता है, तो निलंबन के विस्तार के लिए एक तर्कसंगत आदेश पारित किया जाना चाहिए - सरकार अपराधी को स्थानांतरित करने के लिए स्वतंत्र है कोई अन्य विभाग और ऐसी शर्तें लगाए कि अपराधी जांच को प्रभावित न कर सके –यह मानवीय गरिमा के सिद्धांत और त्वरित सुनवाई के अधिकार की पर्याप्त रूप से रक्षा करेगा और अभियोजन में सरकार के हित को भी संरक्षित करेगा - वर्तमान मामले में, चूंकि अपराधी/अपीलार्थी को आरोप-पत्र दे दिया गया है, इसलिए उपरोक्त निर्देश लागू नहीं होते हैं। उस पर लागू - हालाँकि, अपराधी को उचित मंच पर अपने निरंतर निलंबन को चुनौती देने की स्वतंत्रता दी गई है - भारत का संविधान, 1950 -

अनुच्छेद 21 - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 309 और धारा 167(2) का प्रावधान। - 1215 का मैग्ना कार्टा - मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 - अनुच्छेद 12 - मानव अधिकारों पर यूरोपीय सम्मेलन - अनुच्छेद 6(1)

न्यायालय ने अपील का निपटारा करते हुए माना:

1. वर्तमान मामले में, निलंबन के प्रत्येक विस्तार के लिए और तत्कालीन प्रचलित अवधि की मुद्रा के भीतर कारणों को विस्तृत रूप से दर्ज किया गया था। प्राकृतिक न्याय की हितकारी आवश्यकता, जो किसी आदेश को पारित करने के कारणों को स्पष्ट करना है, का वर्तमान मामले में अनुपालन किया गया है। [पैरा 6] [423-एच; 424-ए,बी]

रवि यशवंत भोइर बनाम जिला कलेक्टर, रायगढ़ 2012 ( 3 ) एससीआर 775 2012 (4) एससीसी 407 अनुपयुक्त ठहराया गया ।

ए. पी. राज्य बनाम एन. राधाकिशन 1998 (2) एससीआर 693= 1998 ( 4 ) एस. सी. सी. 154, भारत संघ बनाम दीपक माली 2009 (16) एससीआर 564 = 2010 (2) एससीसी 222 विशिष्ट

2.1 निलंबन, विशेष रूप से आरोपों के निर्माण से पहले, अनिवार्य रूप से प्रकृति में क्षणभंगुर या अस्थायी है, और अनिवार्य रूप से छोटी अवधि का होना चाहिए। यदि यह अनिश्चित अवधि के लिए है या यदि इसका नवीनीकरण रिकॉर्ड पर समसामयिक रूप से उपलब्ध ठोस तर्क पर आधारित नहीं है, तो यह इसे दंडात्मक प्रकृति का बना देगा। विभागीय/अनुशासनात्मक कार्यवाही हमेशा देरी से शुरू होती है, आरोप पत्र तैयार करने से पहले और बाद में विलंब से ग्रस्त होती है, और अंततः इससे भी अधिक देरी के बाद समाप्त होती है। [पैरा 8] [425-ए-सी]

2.2 त्वरित सुनवाई का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित है और सीआरपीसी 1973 की धारा 309 में भी परिलक्षित होता है; इसमें सभी चरण शामिल हैं, जैसे जांच, पूछताछ, परीक्षण, अपील, पुनरीक्षण और पुनः परीक्षण; देरी को सही ठहराने और समझाने का भार अभियोजन पक्ष पर है; न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए एक संतुलन परीक्षण में संलग्न होना चाहिए कि क्या उसके समक्ष विशेष मामले में इस अधिकार से इनकार किया गया था। इन कारकों को ध्यान में रखते हुए केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने निर्देश दिया था कि अपीलकर्ता का निलंबन 19.3.2013 से 90 दिनों से अधिक नहीं बढ़ाया जाएगा। उच्च न्यायालय ने इस निर्देश को रद्द कर दिया, इसे उस शक्ति वाले प्राधिकारी, यानी, सरकार के लिए न्यायिक दृढ़ संकल्प के प्रतिस्थापन के रूप में देखा। उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को कायम नहीं रखा जा सकता। [पैरा 11] [427-एच; 428-ए-सी]

करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य 1994 (2) एस. सी. आर. 375(1994) 3 एस. सी. सी 569; अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर. एस नायक 1991 (3) पूरक एससीआर 325 = 1992 (1) एससीसी 225 अनुसरण किया ।

पंजाब राज्य बनाम चमन लाल गोयल 1995 (1) एससीआर 695 = ( 1995 ) 2 एस. सी. सी. 570-पर निर्भर।

क्लैफर बनाम उत्तरी कैरोलिना राज्य 386 यू. एस. 233 (1967) संदर्भित किया गया।

2.3 1973 से पहले किसी आरोपी को न्यायिक जांच और पर्यवेक्षण के बाद, लगातार 15 दिनों की अवधि के लिए हिरासत में रखा जा सकता था। सी.आर.पी.सी. 1973 के अधिनियम में एक नया प्रावधान शामिल है, जिसका प्रभाव किसी आरोपी व्यक्ति को 90 दिनों की अवधि से अधिक हिरासत में रखने की अनुमति देने की

मजिस्ट्रेट की शक्ति को सीमित करना है, जहां जांच मौत, आजीवन कारावास या एक अवधि के लिए कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है। 10 वर्ष से कम नहीं, और 60 दिनों से अधिक की अवधि जहां जांच किसी अन्य अपराध से संबंधित हो। सीआरपीसी 1973 की धारा 167(2) के प्रावधान का सार विभागीय/अनुशासनात्मक जांच के मामलों में भी निलंबन आदेशों को नियंत्रित करने के लिए निकाला जा सकता है। यदि संसद यह आवश्यक समझती है कि किसी व्यक्ति को 90 दिनों की समाप्ति के बाद कारावास से रिहा कर दिया जाए, भले ही उस पर सबसे जघन्य अपराध करने का आरोप लगाया गया हो, तो समान अवधि की समाप्ति के बाद एक फोर्टियोरी निलंबन जारी नहीं रखा जाना चाहिए, खासकर जब आरोप / आरोपपत्र का ज्ञापन निलंबित व्यक्ति को तामील नहीं कराया गया है। यह सच है कि धारा 167(2) सीआरपीसी का प्रावधान। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की वकालत करता है, लेकिन मानवीय गरिमा के सम्मान और संरक्षण के साथ-साथ त्वरित सुनवाई के अधिकार को भी उसी आधार पर रखा जाना चाहिए। [पैरा 13] [433-एफएच;434-ए-डी]

रघुबीर सिंह बनाम बिहार राज्य 1986 (3) एससीआर 802 = 1986 ( 4 ) एस. सी. सी. 481-पर निर्भर।

2.4 इसलिए, यह निर्देशित किया जाता है कि निलंबन आदेश की अवधि तीन महीने से अधिक नहीं बढ़ाई जानी चाहिए, यदि इस अवधि के भीतर दोषी अधिकारी/कर्मचारी को आरोप पत्र/चार्जशीट जारी नहीं की जाती है; यदि आरोप पत्र/आरोपपत्र तामील हो जाता है, तो निलंबन के विस्तार के लिए एक तर्कसंगत आदेश पारित किया जाना चाहिए। सरकार संबंधित व्यक्ति को राज्य के भीतर या बाहर अपने किसी भी कार्यालय में किसी भी विभाग में स्थानांतरित करने के लिए स्वतंत्र है ताकि किसी को भी हटाया जा सके। स्थानीय या व्यक्तिगत संपर्क जो उसका हो सकता है और जो वह है उसके खिलाफ जांच में बाधा डालने के लिए दुरुपयोग किया जा सकता है।

सरकार उसे अपना बचाव तैयार करने के चरण तक किसी भी व्यक्ति से संपर्क करने, या रिकॉर्ड और दस्तावेजों को संभालने से भी रोक सकती है। यह मानव गरिमा के सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त सिद्धांत और त्वरित सुनवाई के अधिकार की पर्याप्त रूप से रक्षा करेगा और अभियोजन में सरकार के हित को भी संरक्षित करेगा। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता को अब आरोप पत्र भेज दिया गया है, और इसलिए, ये निर्देश अब उसके लिए प्रासंगिक नहीं हो सकते हैं। हालाँकि, यदि अपीलकर्ता को सलाह दी जाती है तो वह अपने निरंतर निलंबन को कानून द्वारा ज्ञात किसी भी तरीके से चुनौती दे सकता है, और प्रतिवादियों की यह कार्यवाही न्यायिक समीक्षा के अधीन होगी। [पैरा 14-15] [434-ई-एच; 435-सी-एच]

ओ पी गुप्ता बनाम भारत संघ 1988(1)एस सी आर 27=1987(4)एस सी सी 328, के सूखेंदर रेड्डी बनाम ए पी राज्य 1999(6) एस सी सी 257=1999(6) एस सी सी 257 उद्दरत किया ।

वाद कानून संदर्भित

| | | |
|---|---|---|
| 2012(3)एस सी आर 775 | अनुपयुक्त किया | पैरा 6 |
| 1988(1)एस सी आर 27 | उद्दरत किया | पैरा 7 |
| 1999(6)एस सी सी 257 | उद्दरत किया | पैरा 7 |
| 1998(2)एस सी आर 693 | विशिष्ट | पैरा 7 |
| 2009(1)एस सी आर 564 | विशिष्ट | पैरा 7 |
| 386 यू एस 213 (1967) | संदर्भित | पैरा 10 |
| 1994(2)एस सी आर 375 | अनुसरण किया | पैरा 10 |
| 1991(3)पूरक एस सी आर 325 | अनुसरण किया | पैरा 11 |

| | | |
|---|---|---|
| 1995(1)एस सी आर 695 | संदर्भित | पैरा 12 |
| 1986(3)एस सी आर 802 | संदर्भित | पैरा 13 |

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील संख्या 1912/2015

2013 के डब्ल्यूपी (सिविल) संख्या 4017 में दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली के निर्णय और आदेश दिनांक 04.09.2013 से।

अपीलकर्ता की ओर से निधेश गुप्ता, रवि प्रकाश, नीतीश गुप्ता, चंद्र प्रकाश।

उत्तरदाताओं के लिए पी.एस. पटवालिया, एएसजी, माधवी दवान, कविन गुलाटी, किरण भारद्वाज, बी.वी. बलराम दास।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था-

न्यायाधिपति विक्रमजीत सेन

1. अनुमति दे दी गई।

2. अपीलकर्ता ने अपने निलंबन पर आपत्ति जताई है जो 30.9.2011 को प्रभावी हुआ था और तब से इसे बढ़ाया और जारी रखा गया है। नवंबर, 2006 में, उन्हें रक्षा संपदा अधिकारी (डीईओ) कश्मीर सर्कल, जम्मू और कश्मीर के रूप में तैनात किया गया था। इस कार्यकाल के दौरान यह पाया गया कि भारत संघ के स्वामित्व वाली और महानिदेशक रक्षा संपदा के पास मौजूद भूमि का एक बड़ा हिस्सा राजस्व रिकॉर्ड में रक्षा भूमि के रूप में परिवर्तित/नोट नहीं किया गया था। अपीलकर्ता का आरोप है कि 2008 और 2009 के बीच, कार्यालय-नोट उनके कर्मचारियों, अर्थात् श्री विजय कुमार, एसडीओ-ई, श्रीमती द्वारा तैयार किए गए थे। अमरजीत कौर, एसडीओ-ई, श्री अब्दुल सयूम तकनीकी सहायक, और श्री नूर मोहम्मद, एलडीसी, ने कहा कि लगभग चार एकड़ भूमि रक्षा भूमि नहीं थी, बल्कि निजी भूमि थी जिसके संबंध में एनओसी जारी

की जा सकती थी। ये एनओसी तदनुसार अपीलकर्ता द्वारा जारी किए गए थे। इसके बाद, 3.4.2010 को अपीलकर्ता को अंबाला कैंट में स्थानांतरित कर दिया गया। हालाँकि, पत्र दिनांक 25.1.2011 द्वारा अपीलकर्ता को तथ्यात्मक रूप से गलत एनओसी जारी करने के लिए अपना स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया था। अपने जवाब में अपीलकर्ता ने अपनी गलती स्वीकार की, एनओसी जारी करने में किसी भी तरह की गड़बड़ी से इनकार किया और एनओसी जारी करने के लिए एसडीओ/तकनीकी अधिकारी के अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा तैयार किए गए नोट्स को जिम्मेदार ठहराया। इसी पृष्ठभूमि में उन्हें 30.9.2011 का निलंबन आदेश प्राप्त हुआ। अपीलकर्ता द्वारा केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, चंडीगढ़ बेंच के साथ-साथ पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में विभिन्न मुकदमे शुरू किए गए, जिनसे हमारा कोई लेना-देना नहीं है। . अपीलकर्ता का दावा है कि चूंकि विषय भूमि वायु सेना स्टेशन की पैरामीटर दीवार के भीतर थी, इसलिए उसका कोई भौतिक हस्तांतरण नहीं हुआ है। 28.12.2011 को अपीलकर्ता का निलंबन पहली बार 180 दिनों की अवधि के लिए बढ़ाया गया था। इसने अपीलकर्ता को केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, चंडीगढ़ बेंच (कैट) से संपर्क करने के लिए प्रेरित किया, और कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान 26.6.2012 से 180 दिनों की एक और अवधि के लिए दूसरे विस्तार का आदेश दिया गया। इन विस्तारों की चुनौती को सीएटी के समक्ष सफलता नहीं मिली। इसके बाद, अपीलकर्ता के निलंबन का तीसरा विस्तार 21.12.2012 को आदेश दिया गया, लेकिन 90 दिनों की अवधि के लिए। इसके बाद 22.3.2013 से 90 दिनों की एक और अवधि के लिए चौथा निलंबन हुआ

3. ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 22.5.2013 के संदर्भ में अपीलकर्ता को आंशिक राहत दी है कि किसी भी कर्मचारी को अनिश्चित काल तक निलंबित नहीं किया जा सकता है; अनुशासनात्मक कार्यवाही उचित अवधि के भीतर समाप्त की जानी चाहिए। कैट ने निर्देश दिया कि यदि 21.6.2013 को तत्कालीन

प्रचलित अवधि की समाप्ति से पहले अपीलकर्ता को कोई चार्ज मेमो जारी नहीं किया गया था, तो अपीलकर्ता को सेवा में बहाल कर दिया जाएगा। कैट ने आगे आदेश दिया कि यदि जांच करने का निर्णय लिया गया था तो उसे ऐसा करना होगा। "समयबद्ध तरीके से" निष्कर्ष निकाला गया। अपीलकर्ता का आरोप है कि निलंबन को 19.6.2013 से आगे नहीं बढ़ाया गया लेकिन यह सही नहीं है। प्रतिवादी, भारत संघ ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की जिसमें कहा गया कि न्यायाधिकरण ने उस शक्ति का प्रयोग किया था जो उसके पास नहीं थी क्योंकि उसने निर्देश दिया था कि यदि समाप्ति के बाद अपीलकर्ता को चार्ज मेमो दिया गया तो निलंबन नहीं बढ़ाया जाएगा। 19.3.2013 से 90 दिन (अर्थात् तत्कालीन प्रचलित निलंबन आदेश की मुद्रा)। इस चुनौती को 4 सितंबर, 2013 के आक्षेपित फैसले के संदर्भ में न्यायालय का समर्थन प्राप्त हुआ है। रिट न्यायालय ने उसके समक्ष यह प्रश्न प्रस्तुत किया कि "क्या आक्षेपित निर्देश निलंबन जारी रखने और साथ ही एक अवधि के भीतर आरोप पत्र जारी करने की सरकार की शक्ति को सीमित करते हैं। समयबद्ध तरीके को बरकरार रखा जा सकता है"। यह राय दी गई कि न्यायाधिकरण का दृष्टिकोण "निलंबन जारी रखने के औचित्य या तर्क के संबंध में शक्ति रखने वाले प्राधिकारी यानी कार्यकारी सरकार के न्यायिक दृढ़ संकल्प के प्रतिस्थापन के अलावा कुछ नहीं था"। रिट याचिका की अनुमति दी गई और केंद्र सरकार को उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया कि "क्या वह निलंबन जारी रखना चाहती है या सभी प्रासंगिक कारकों पर ध्यान नहीं दे रही है, जिसमें सीबीआई की रिपोर्ट भी शामिल है, यदि कोई हो, तो उसे प्राप्त हो सकती है।" अब यह अभ्यास यथाशीघ्र और आज से दो सप्ताह के भीतर पूरा किया जाना चाहिए।"

4. इसके कारण इस न्यायालय के समक्ष अपील दायर की गई है। 11.07.14 को हुई सुनवाई में, यह नोट किया गया कि दिनांक 13.6.2014 के पत्र द्वारा अपीलकर्ता का निलंबन 15.6.2014 (यानी चौथा विस्तार) से 90 दिनों की अवधि के लिए जारी रखा

गया था, और उस जांच को जारी रखा गया था पूरा हो जाने पर, अभियोजन की मंजूरी दो सप्ताह की अवधि के भीतर दी जानी थी। जब 9 सितंबर, 2014 को दलीलें बहुत विस्तार से सुनी गईं, उस तारीख तक अपीलकर्ता को न तो कोई आरोप पत्र और न ही कोई आरोप पत्र दिया गया था। अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया था कि यह पत्र, साथ ही पूर्ववर्ती दिनांक 8.10.2013, पिछली तारीख का था। हमने मूल रिकॉर्ड मंगवाए थे और अवलोकन करने पर हमें यह तर्क बेबुनियाद लगा।

5. विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने प्रस्तुत किया है कि मूल निलंबन एक विभागीय जांच पर विचार कर रहा था जो केंद्रीय निर्देश के कारण शुरू नहीं हो सका। यदि मामला सीबीआई की जांच के अधीन है तो सतर्कता आयोग ने इसके शुरू होने पर रोक लगा दी है। अभियोजन की स्वीकृति 1.8.2014 को दी गई। यह भी प्रस्तुत किया गया था कि अपीलकर्ता को 12.9.2014 से पहले (अर्थात्, चौथे विस्तार की समाप्ति से पहले) आरोप पत्र सौंपे जाने की उम्मीद थी। हालाँकि, हमें यह रेखांकित करने की आवश्यकता है कि अपीलकर्ता 30.9.2011 से लगातार निलंबन पर है।

6. यह दर्ज करना आवश्यक है कि सभी प्रासंगिक फाइलें हमें दिखाई गईं, जिनके अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि निलंबन के प्रत्येक विस्तार के लिए और तत्कालीन प्रचलित अवधि की मुद्रा के भीतर कारणों को विस्तृत रूप से दर्ज किया गया था। इसलिए, रवि यशवंत भोईर बनाम जिला कलेक्टर, रायगढ़ 2012 (4) एससीसी 407 मामले में अपीलकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील की निर्भरता का कोई फायदा नहीं है, क्योंकि प्राकृतिक न्याय की हितकर आवश्यकता है, जो कि पारित होने के कारणों को स्पष्ट करना है। आदेश का अनुपालन कर लिया गया है।

7. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील ने, हालांकि, इस न्यायालय के कई निर्णयों पर सही ढंग से भरोसा किया है, जिसमें ओ.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ 1987

(4) एससीसी 328 शामिल है, जहां इस न्यायालय ने कहा है कि एक कर्मचारी का निलंबन उचित है। उसके हितों के लिए हानिकारक है और इसे अनुचित रूप से लंबी अवधि तक जारी नहीं रखा जाना चाहिए; इसलिए, निलंबन का आदेश हल्के में पारित नहीं किया जाना चाहिए। हमारा ध्यान के. सुखेंद्र रेड्डी बनाम ए. पी. राज्य 1999 (6) एससीसी 257 की ओर भी आकर्षित किया गया है, जो इस मायने में सामयिक है कि यह उन परिस्थितियों में अनिश्चित काल तक जारी चयनात्मक निलंबन की निंदा करता है जहां अन्य शामिल व्यक्तियों की कोई जांच नहीं की गई थी। इस निर्णय पर भरोसा उन स्वीकृत तथ्यों की पृष्ठभूमि में है कि जिन सभी व्यक्तियों को कार्यालय-नोट बनाने की जानकारी थी, उनके खिलाफ विभागीय कार्यवाही नहीं की गई है। जहां तक कर्मचारी के प्रति पूर्वाग्रहपूर्ण व्यवहार का प्रश्न है, इस न्यायालय ने एपी राज्य बनाम एन राधाकिशन 1998 (4) एससीसी 154 में कहा है कि यदि कोई अस्पष्टीकृत देरी होती है तो पूर्वाग्रह की यह धारणा बनाना उचित होगा। कार्यवाही के समापन में. हालाँकि, भारत संघ बनाम दीपक माली 2010 (2) एससीसी 222 में इस न्यायालय का निर्णय अपीलकर्ता की सहायता के लिए नहीं आता है क्योंकि मूल रूप से प्रस्तुत रिकॉर्ड के हमारे निरीक्षण से यह स्थापित हो गया है कि सबसे पहले, निलंबन जारी रखने का निर्णय लिया गया है। तत्कालीन प्रचलित अवधि के भीतर किया गया था और दूसरी बात यह कि इसे विस्तृत तर्क द्वारा विधिवत समर्थित किया गया था।

8. निलंबन, विशेष रूप से आरोपों के निर्माण से पहले, अनिवार्य रूप से प्रकृति में क्षणभंगुर या अस्थायी है, और कम अवधि का होना चाहिए। यदि यह अनिश्चित अवधि के लिए है या यदि इसका नवीनीकरण रिकॉर्ड पर समसामयिक रूप से उपलब्ध ठोस तर्क पर आधारित नहीं है, तो यह इसे दंडात्मक प्रकृति का बना देगा। विभागीय/अनुशासनात्मक कार्यवाही हमेशा देरी से शुरू होती है, आरोपों के ज्ञापन को

तैयार करने से पहले और बाद में विलंब से ग्रस्त होती है, और अंततः इससे भी अधिक देरी के बाद समाप्त होती है।

9. निलंबन की लंबी अवधि, उसका बार-बार नवीनीकरण, अफसोसजनक रूप से आदर्श बन गया है और अपवाद नहीं है जैसा कि उन्हें होना चाहिए। आक्षेपों की बदनामी, समाज का तिरस्कार और अपने विभाग का उपहास झेल रहे निलंबित व्यक्ति को औपचारिक रूप से किसी दुष्कर्म, अविवेक या अपराध का आरोप लगने से पहले ही यह कष्ट सहना पड़ता है। उसकी पीड़ा उसका ज्ञान है कि यदि और जब आरोप लगाया जाता है, तो जांच या पूछताछ को उसके चरम तक पहुंचने में, यानी उसकी बेगुनाही या अधर्म का निर्धारण करने में अत्यधिक समय लगेगा। अक्सर यह अब सेवानिवृत्ति के लिए एक संगत बन गया है। निःसंदेह, कुतर्कवादी चतुराई से इस बात का प्रतिवाद करेगा कि हमारा संविधान स्पष्ट रूप से या तो जेल में बंद व्यक्ति को भी त्वरित सुनवाई के अधिकार की गारंटी नहीं देता है, या अभियुक्त को निर्दोष मानने का अधिकार नहीं देता है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि ये दोनों कारक कानूनी आधार मानदंड हैं, सामान्य कानून न्यायशास्त्र के अटूट सिद्धांत हैं, यहां तक कि 1215 के मैग्ना कार्टा से भी पहले, जो आश्वासन देता है कि - "हम किसी भी आदमी को नहीं बेचेंगे, हम किसी भी आदमी को अस्वीकार या स्थगित नहीं करेंगे या तो न्याय या सही।" इसी तरह, संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में छठा संशोधन यह गारंटी देता है कि सभी आपराधिक मुकदमों में आरोपी को त्वरित और सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार मिलेगा। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 12 में यह आश्वासन दिया गया है कि - "किसी को भी उसकी निजता, परिवार, घर या पत्राचार में मनमाने ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा, न ही उसके सम्मान और प्रतिष्ठा पर हमला किया जाएगा। हर किसी को कानून की सुरक्षा का अधिकार है।" ऐसे हस्तक्षेप या हमलों के ख़िलाफ़"। अभी हाल ही में, अनुच्छेद 6(1) में मानव अधिकारों पर यूरोपीय कन्वेंशन

का वादा है कि "अपने नागरिक अधिकारों और दायित्वों या उसके खिलाफ किसी भी आपराधिक आरोप के निर्धारण में, हर कोई उचित समय के भीतर निष्पक्ष और सार्वजनिक सुनवाई का हकदार है .... " और इसके दूसरे उप लेख में कहा गया है कि "आपराधिक अपराध के आरोप वाले प्रत्येक व्यक्ति को कानून के अनुसार दोषी साबित होने तक निर्दोष माना जाएगा"।

10. संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने क्लैफ़र बनाम उत्तरी कैरोलिना राज्य 386 यू.एस. 213 (1967) में नागरिक या आपराधिक अभियोजन के अनिश्चितकालीन लेकिन अशुभ और सर्वव्यापी स्थगन के उपयोग को रद्द कर दिया। करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य (1994) 3 एससीसी 569 मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने स्पष्ट रूप से त्वरित सुनवाई के अधिकार को मौलिक अधिकार माना था, और हम उस प्रसिद्ध निर्णय से इन पैराग्राफों को निकालने से बेहतर कुछ नहीं कर सकते -

> "86 त्वरित सुनवाई की अवधारणा को अनुच्छेद 21 में हमारे संविधान के तहत गारंटीकृत और संरक्षित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के एक अनिवार्य भाग के रूप में पढ़ा जाता है। त्वरित सुनवाई का अधिकार गिरफ्तारी और परिणामी कारावास द्वारा लगाए गए वास्तविक प्रतिबंध से शुरू होता है और जारी रहता है। सभी चरण, अर्थात् जांच, पूछताछ, परीक्षण, अपील और पुनरीक्षण के चरण ताकि किसी भी संभावित पूर्वाग्रह को रोका जा सके जो अपराध के घटित होने के समय से लेकर उसके अंतिम रूप तक पहुंचने तक अपरिहार्य और टालने योग्य विलंब के परिणामस्वरूप हो सकता है। इस संदर्भ में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि त्वरित सुनवाई की

संवैधानिक गारंटी आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 309 में उचित रूप से परिलक्षित होती है।

87. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से निपटते समय हुसैनारा खातून (प्रथम) बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य में इस न्यायालय ने इस प्रकार देखा है:

"कोई भी प्रक्रिया जो यथोचित त्वरित सुनवाई सुनिश्चित नहीं करती है उसे 'उचित, निष्पक्ष या न्यायसंगत' नहीं माना जा सकता है और यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि त्वरित सुनवाई, और त्वरित सुनवाई से हमारा तात्पर्य उचित है त्वरित सुनवाई, अनुच्छेद 21 में निहित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न और आवश्यक हिस्सा है। हालांकि, सवाल यह उठता है कि यदि किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति को त्वरित सुनवाई से वंचित कर दिया जाता है तो परिणाम क्या होगा। अनुच्छेद 21 के तहत अपने मौलिक अधिकार के उल्लंघन में लंबे समय तक विलंबित मुकदमे के परिणामस्वरूप कारावास से अपनी स्वतंत्रता से वंचित होने की मांग की गई। क्या वह इस आधार पर अपने खिलाफ लगाए गए आरोप से बिना शर्त रिहा होने का हकदार होगा कि उस पर मुकदमा चलाया जा रहा है? अनुचित रूप से लंबी अवधि और ऐसे मुकदमे के बाद उसे दोषी ठहराना अनुच्छेद 21 के तहत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा।"

11. इस न्यायालय द्वारा आपराधिक मुकदमे और विभागीय जांच के प्रत्येक चरण में शीघ्रता और परिश्रम की कानूनी अपेक्षा पर कई अवसरों पर जोर दिया गया है।

अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर.एस. मामले में संविधान पीठ नायक, 1992 (1) एससीसी 225, ने रेखांकित किया कि त्वरित सुनवाई का यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित है और सीआरपीसी, 1973 की धारा 309 में भी परिलक्षित होता है; इसमें सभी चरण शामिल हैं, जैसे जांच, पूछताछ, परीक्षण, अपील, पुनरीक्षण और पुनः परीक्षण; देरी को उचित ठहराने और स्पष्ट करने का भार अभियोजन पक्ष पर है; न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए एक संतुलन परीक्षण में संलग्न होना चाहिए कि क्या उसके समक्ष विशेष मामले में इस अधिकार से इनकार किया गया था। इन कारकों को ध्यान में रखते हुए कैट ने मामले में निर्देश दिया था कि अपीलकर्ता का निलंबन 19.3.2013 से 90 दिनों से अधिक नहीं बढ़ाया जाएगा। उच्च न्यायालय ने इस निर्देश को रद्द कर दिया था, इसे उस शक्ति वाले प्राधिकारी, यानी सरकार के लिए न्यायिक दृढ़ संकल्प के प्रतिस्थापन के रूप में देखा था। अंतुले में संविधान पीठ की निम्नलिखित घोषणा के मद्देनजर उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष बरकरार नहीं रखा जा सकता है:

> "86. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, निम्नलिखित प्रस्ताव सामने आते हैं, जो दिशानिर्देश के रूप में काम करेंगे। हमें पहले ही सावधान कर देना चाहिए कि ये प्रस्ताव संपूर्ण नहीं हैं। सभी स्थितियों का पूर्वाभास करना कठिन है। न ही कोई कठोर नियम बनाना संभव है। ये प्रस्ताव हैं:
>
> (1) संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष, उचित और उचित प्रक्रिया आरोपी पर शीघ्र मुकदमा चलाने का अधिकार बनाती है। त्वरित सुनवाई का अधिकार अभियुक्त का अधिकार है. तथ्य यह है कि त्वरित सुनवाई भी सार्वजनिक हित में है या यह सामाजिक हित में भी काम करती है, इससे यह अभियुक्त का अधिकार कम नहीं हो

जाता है। यह सभी संबंधित पक्षों के हित में है कि आरोपी के अपराध या निर्दोषता का यथाशीघ्र निर्धारण किया जाए।

(2) अनुच्छेद 21 से प्राप्त त्वरित सुनवाई के अधिकार में सभी चरण शामिल हैं, अर्थात् जांच, पूछताछ, परीक्षण, अपील, पुनरीक्षण और पुनः परीक्षण का चरण। इस प्रकार, इस न्यायालय ने इस अधिकार को समझा है और प्रतिबंधित दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं है।

(3) अभियुक्त के दृष्टिकोण से त्वरित सुनवाई के अधिकार में अंतर्निहित चिंताएँ हैं:

(ए) रिमांड और दोषसिद्धि पूर्व हिरासत की अवधि यथासंभव कम होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, अभियुक्त को उसकी दोषसिद्धि से पहले अनावश्यक या अनुचित रूप से लंबे समय तक कारावास में नहीं रखा जाना चाहिए;

(बी) अनावश्यक रूप से लंबे समय तक जांच, पूछताछ या परीक्षण के परिणामस्वरूप उसके व्यवसाय और शांति में चिंता, चिंता, व्यय और अशांति न्यूनतम होनी चाहिए; और

(सी) अनुचित देरी के परिणामस्वरूप अभियुक्त की खुद का बचाव करने की क्षमता क्षीण हो सकती है, चाहे वह मृत्यु, गायब होने या गवाहों की अनुपलब्धता या अन्यथा के कारण हो।

(4) साथ ही, इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि आमतौर पर आरोपी ही कार्यवाही में देरी करने में रुचि रखता है। जैसा कि अक्सर बताया गया है, "देरी एक ज्ञात रक्षा रणनीति है"।

चूंकि अभियुक्त का अपराध साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है, देरी आमतौर पर अभियोजन पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। गवाहों की अनुपलब्धता, समय बीतने पर साक्ष्यों का गायब हो जाना वास्तव में अभियोजन पक्ष के हित के विरुद्ध है। बेशक, ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां अभियोजन पक्ष, किसी भी कारण से, कार्यवाही में देरी भी करता है। इसलिए, हर मामले में, जहां त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन होने का आरोप लगाया गया है, पहला सवाल पूछा जाना चाहिए और जवाब दिया जाना चाहिए - देरी के लिए कौन जिम्मेदार है? किसी भी पक्ष द्वारा अपने अधिकारों और हितों की पुष्टि के लिए सद्भावना से की गई कार्यवाही, जैसा कि उनका मानना है, को देरी की रणनीति के रूप में नहीं माना जा सकता है और न ही ऐसी कार्यवाही को आगे बढ़ाने में लगने वाले समय को देरी में गिना जा सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि निरर्थक कार्यवाही या केवल गणना के दिन की देरी के लिए की गई कार्यवाही को अच्छे विश्वास में की गई कार्यवाही के रूप में नहीं माना जा सकता है। केवल यह तथ्य कि एक आवेदन/याचिका स्वीकार कर ली गई है और एक वरिष्ठ न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश दे दिया गया है, अपने आप में इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि कार्यवाही तुच्छ नहीं है। अक्सर ये स्थगन एकपक्षीय प्रतिनिधित्व पर प्राप्त किए जाते हैं।

(5) यह निर्धारित करते समय कि क्या अनुचित देरी हुई है (जिसके परिणामस्वरूप स्पीडीट्रायल के अधिकार का उल्लंघन हुआ है) किसी को अपराध की प्रकृति, अभियुक्तों और गवाहों की संख्या, संबंधित अदालत का कार्यभार, प्रचलित स्थानीय परिस्थितियों सहित सभी

संबंधित परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए। और इसी तरह जिसे प्रणालीगत देरी कहा जाता है। यह सच है कि त्वरित सुनवाई सुनिश्चित करना राज्य का दायित्व है और राज्य में न्यायपालिका भी शामिल है, लेकिन ऐसे मामलों में पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण के बजाय यथार्थवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

(6) प्रत्येक देरी से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। कुछ देरी वास्तव में उसके लाभ के लिए काम कर सकती है। जैसा कि पावेल, जे. ने बार्के 33 एल एड 2डी 101 में देखा है, "यह नहीं कहा जा सकता कि उस व्यवस्था में कितनी देरी बहुत लंबी है जहां न्याय त्वरित लेकिन जानबूझकर होना चाहिए"। यही विचार व्हाइट, जे. ने यू.एस. बनाम ईवेल 15 एल एड 2डी 627 में निम्नलिखित शब्दों में कहा है:

"... त्वरित सुनवाई का छठा संशोधन आवश्यक रूप से सापेक्ष है, देरी के अनुरूप है, और इसके आवश्यक तत्वों के रूप में केवल गति के बजाय व्यवस्थित अभियान है; और क्या अभियोजन पूरा करने में देरी असंवैधानिक रूप से अधिकारों से वंचित करना है, यह सभी परिस्थितियों पर निर्भर करता है।' हालाँकि, अत्यधिक लंबे विलंब को पूर्वाग्रह के अनुमानित प्रमाण के रूप में लिया जा सकता है। इस संदर्भ में अभियुक्तों के कारावास का तथ्य भी एक प्रासंगिक तथ्य होगा। अभियोजन को उत्पीड़न नहीं बनने देना चाहिए. लेकिन अभियोजन कब उत्पीड़न बन जाता है, यह फिर से दिए गए मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है।

(7) हम 'मांग' नियम को न तो पहचान सकते हैं और न ही उस पर अमल कर सकते हैं। कोई अभियुक्त स्वयं मुकदमा नहीं चला सकता; अभियोजन पक्ष के आदेश पर अदालत द्वारा उस पर मुकदमा चलाया जाता है। इसलिए, किसी आरोपी की त्वरित सुनवाई से इनकार करने की दलील को यह कहकर खारिज नहीं किया जा सकता कि आरोपी ने कभी भी त्वरित सुनवाई की मांग नहीं की। यदि किसी दिए गए मामले में, उसने ऐसी मांग की थी और फिर भी उस पर तेजी से मुकदमा नहीं चलाया गया, तो यह उसके पक्ष में एक प्लस पॉइंट होगा, लेकिन केवल त्वरित सुनवाई की मांग न करने को आरोपी के खिलाफ नहीं रखा जा सकता है। यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में भी, बार्कर 33 एल एड 2 डी 101 और अन्य सफल मामलों में मांग नियम की प्रासंगिकता को काफी हद तक कम कर दिया गया है।

(8) अंततः, अदालत को कई प्रासंगिक कारकों - 'संतुलन परीक्षण' या 'संतुलन प्रक्रिया' - को संतुलित और तौलना होगा और प्रत्येक मामले में यह निर्धारित करना होगा कि क्या किसी दिए गए मामले में त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार किया गया है।

(9) सामान्यतया, जहां अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि किसी आरोपी के शीघ्र मुकदमे की सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन किया गया है, आरोप या दोषसिद्धि, जैसा भी मामला हो, रद्द कर दी जाएगी। लेकिन यह एकमात्र रास्ता नहीं है। किसी मामले में अपराध की प्रकृति और अन्य परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं कि कार्यवाही को रद्द करना न्याय के हित में नहीं हो सकता है। ऐसे मामले में, अदालत ऐसे अन्य उचित आदेश देने के लिए स्वतंत्र है - जिसमें मुकदमे को एक

निश्चित समय के भीतर समाप्त करने का आदेश शामिल है जहां मुकदमा समाप्त नहीं हुआ है या जहां मुकदमा समाप्त हो गया है वहां सजा कम करने का आदेश शामिल है - जिसे उचित माना जा सकता है और मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत है।

(10) अपराधों की सुनवाई के लिए कोई समय-सीमा तय करना न तो उचित है और न ही व्यावहारिक; ऐसा कोई भी नियम योग्य होने के लिए बाध्य है। इस तरह का नियम केवल औचित्य साबित करने का बोझ अभियोजन पक्ष के कंधों पर डालने के लिए भी विकसित नहीं किया जा सकता है। त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार की शिकायत के प्रत्येक मामले में, देरी को उचित ठहराना और समझाना मुख्य रूप से अभियोजन पक्ष का काम है। साथ ही, शिकायत पर फैसला सुनाने से पहले किसी मामले की सभी परिस्थितियों पर विचार करना अदालत का कर्तव्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने भी छठे संशोधन के बावजूद ऐसी किसी भी बाहरी समय-सीमा को तय करने से बार-बार इनकार किया है। न ही हम यह सोचते हैं कि ऐसी कोई बाहरी सीमा तय न करने से त्वरित सुनवाई के अधिकार की गारंटी निष्प्रभावी हो जाती है।

(11) त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार करने और उस कारण राहत के लिए आपत्ति पर आधारित आपत्ति को पहले उच्च न्यायालय को संबोधित किया जाना चाहिए। भले ही उच्च न्यायालय ऐसी याचिका पर विचार करता है, लेकिन गंभीर और असाधारण प्रकृति के मामले को छोड़कर, आमतौर पर उसे कार्यवाही पर रोक नहीं लगानी

चाहिए। हालाँकि, उच्च न्यायालय में ऐसी कार्यवाही को प्राथमिकता के आधार पर निपटाया जाना चाहिए।"

12. पंजाब राज्य बनाम चमन लाल गोयल (1995) 2 एससीसी 570 अन्य बातों के साथ-साथ उल्लेख के योग्य है, क्योंकि कार्रवाई 25.3.1992 को शुरू की गई थी और 1.1.1987 को हुई एक घटना के संबंध में 9.7.1992 को आरोप ज्ञापन जारी किया गया था। उस मामले में तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने में, इस न्यायालय ने देरी के कारण जांच को रद्द करने के उच्च न्यायालय के फैसले को सुरक्षित रखा और रद्द कर दिया, लेकिन निर्देश दिया कि जांच की लंबितता को परिप्रेक्ष्य में रखे बिना संबंधित अधिकारी को पदोन्नति के लिए तुरंत विचार किया जाना चाहिए।

13. यह याद रखना उपयोगी होगा कि 1973 से पहले किसी आरोपी को न्यायिक जांच और पर्यवेक्षण के बाद भी लगातार 15 दिनों की अवधि के लिए हिरासत में रखा जा सकता था। सी.आर.पी.सी. 1973 के अधिनियम में एक नया प्रावधान शामिल है, जिसमें किसी आरोपी व्यक्ति को 90 दिनों की अवधि से अधिक हिरासत में रखने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्ति को सीमित करने का प्रभाव है, जहां जांच मौत, आजीवन कारावास या कम अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है। 10 वर्ष से अधिक, और 60 दिनों की अवधि से अधिक जहां जांच किसी अन्य अपराध से संबंधित हो।रघुबीर सिंह बनाम बिहार राज्य, 1986 (4) धारा 481 में डिवीजन बेंच की टिप्पणियों और अंतुले में संविधान पीठ की टिप्पणियों से समर्थन लेते हुए, हम धारा 167 (2) के प्रावधान की सर्वोत्कृष्टता को उजागर करने के लिए प्रेरित हुए हैं। सी.आर.पी.सी. 1973 में विभागीय/अनुशासनात्मक जांच के मामलों में भी निलंबन आदेशों को नियंत्रित किया गया। हमें ऐसा लगता है कि यदि संसद यह आवश्यक समझती है कि किसी व्यक्ति को 90 दिनों की समाप्ति के बाद कैद से रिहा कर दिया जाए, भले ही उस पर सबसे जघन्य अपराधों का आरोप लगाया गया हो, तो समान

अवधि की समाप्ति के बाद विशेष रूप से तब निलंबन जारी नहीं रखा जाना चाहिए। निलंबित व्यक्ति को आरोप/आरोपपत्र तामील नहीं कराया गया है। यह सच है कि धारा 167(2) सीआरपीसी का प्रावधान। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पुष्टि करता है, लेकिन मानवीय गरिमा के सम्मान और संरक्षण के साथ-साथ त्वरित सुनवाई के अधिकार को भी उसी आधार पर रखा जाना चाहिए।

14. इसलिए, हम निर्देश देते हैं कि निलंबन आदेश की अवधि तीन महीने से अधिक नहीं बढ़ाई जानी चाहिए, यदि इस अवधि के भीतर दोषी अधिकारी/कर्मचारी को आरोप/चार्जशीट का ज्ञापन नहीं भेजा जाता है; यदि आरोप /आरोपपत्र तामील हो जाता है तो निलंबन के विस्तार के लिए एक तर्कसंगत आदेश पारित किया जाना चाहिए। जैसा कि मौजूदा मामले में है, सरकार संबंधित व्यक्ति को राज्य के भीतर या बाहर अपने किसी भी कार्यालय में किसी भी विभाग में स्थानांतरित करने के लिए स्वतंत्र है ताकि उसके किसी भी स्थानीय या व्यक्तिगत संपर्क को खत्म किया जा सके और जिसका वह अपने खिलाफ जांच में बाधा डालने के लिए दुरुपयोग कर सकता है। सरकार उसे अपना बचाव तैयार करने के चरण तक किसी भी व्यक्ति से संपर्क करने, या रिकॉर्ड और दस्तावेजों को संभालने से भी रोक सकती है। हमारा मानना है कि यह मानवीय गरिमा के सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त सिद्धांत और त्वरित सुनवाई के अधिकार की पर्याप्त रूप से रक्षा करेगा और अभियोजन में सरकार के हित को भी संरक्षित करेगा। हम मानते हैं कि पिछली संविधान पीठें देरी के आधार पर कार्यवाही को रद्द करने और उनकी अवधि के लिए समय सीमा निर्धारित करने में अनिच्छुक रही हैं। हालाँकि, निलंबन की अवधि पर कोई सीमा लगाने पर पूर्व मामले के कानून में चर्चा नहीं की गई है, और यह न्याय के हितों के विपरीत नहीं होगा। इसके अलावा, केंद्रीय सतर्कता आयोग का निर्देश है कि लंबित आपराधिक जांच के लिए विभागीय कार्यवाही की जाए। हमारे द्वारा अपनाए गए रुख को ध्यान में रखते हुए इसे स्थगित रखा जाए।

15. जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों का सवाल है, अपीलकर्ता को अब आरोप पत्र भेज दिया गया है, और इसलिए, ये निर्देश अब उसके लिए प्रासंगिक नहीं हो सकते हैं। हालाँकि, यदि अपीलकर्ता को सलाह दी जाती है तो वह अपने निरंतर निलंबन को कानून द्वारा ज्ञात किसी भी तरीके से चुनौती दे सकता है, और प्रतिवादियों की यह कार्रवाई न्यायिक समीक्षा के अधीन होगी।

16. अपील का निपटारा उपरोक्त शर्तों के तहत किया जाता है और हम जुर्माना लगाने से बचते हैं।

कल्पना के.त्रिपाठी

अपील निस्तारित की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता निशा पालीवाल द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।